प्रवचन नं. ३९ गाथा-११ ता. २१-७-७८ शुक्रवार अषाढ वदी-१ सं.२५०४

आज श्रावण वदी एकम है सिद्धांत में। दिव्यध्वनि दिन, भगवान की दिव्यध्वनि का आज दिन है। भगवान की राजगृही के पास विपुलाचल पर्वत पर आज दिव्यध्वनि निकली थी। केवलज्ञान तो वैशाख सुदी दशवीं को हुआ था। परंतु छियासठ दिन वाणी बंद रही। वाणी का योग नहीं और सुननेवालों का (भी) योग नहीं। (भगवान महावीर की) वाणी छियासठ दिन बंद रही। आज सुबह में सूर्योदय के दो घड़ी... (बाद) दिव्यध्वनि छूटी। इन्द्र लाये गणधर को, गौतमस्वामी को अंदर लाये, मानस्थंभ जहाँ देखा, उसमें उनका मान गल गया, और उन्हें स्वयं अंदर भावश्रुतज्ञान प्रगट हो गया। ***भगवान की वाणी निकली, उस वाणी में भावश्रुतज्ञान आया, केवलज्ञान नहीं।*** भावश्रुतज्ञान में सभी आये। क्योंकि वाणी है न अर्थात उनके भावरूप अर्थ के कर्त्ता तीर्थंकर कहलाते हैं और उसकी रचना ग्रंथ के कर्त्ता गौतमगणधर (है)। इसलिये वह भावश्रुतरूप परिणमती है और बाद में उसकी रचना द्रव्यश्रुतरूप करते हैं। परंतु भावश्रुतरूप परिणमते है उस वाणी को भी भगवान ने भावश्रुत कहा - ऐसा कहा। ***`धवल' में लेख है भगवान की वाणी में भावश्रुत द्वारा कथन (होता) - ऐसा आया, भावश्रुत द्वारा समझाया*** अर्थ करनेवालों ने। आहाहा !

सभी भावश्रुत से समझाया सब कुछ, केवलज्ञान आदि जितने जगत के (पदार्थ) छह द्रव्य उनके गुण पर्याय वगैरह वह भावश्रुत में आ जाते हैं, परंतु केवलज्ञान से वह समझाया - ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? उसमें पेंसठ पेज पर लिखा है भावश्रुत द्वारा अर्थ को समझाया भगवान ने। आहाहा ! इन गणधर ने भावश्रुत को सुना और उन्हें भी भावश्रुतज्ञान परिणमा, आहाहा ! अंर्तमुख होकर उन्हें भी भावश्रुतज्ञान हुआ। आज यह दिन है। दिव्यध्वनि का और गणधर (देव) ने अंतर्मुहूर्त में चार ज्ञान प्रगट किये और बारह अंगों की रचना की। बारह अंगों की रचना की वह क्रम से की। एक समय में हुई - ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? क्रमशः बारह अंग की रचना भी अंतर्मुहूर्त में (हुई) आहाहाहा !

जैसे (जैसे) भगवान की भावश्रुतज्ञान धारा चली, उसी प्रकार गणधर भी भावश्रुतज्ञानरूप परिणमे। आहाहा ! उन्होंने एक अंतर्मुहूर्त के अंदर, आहाहाहा ! दो घड़ी के अंदर चार ज्ञान प्रगट किये, मति-श्रुत अवधि मनः पर्यय और अंतर्मुहूर्त में जो आचारंगादिग्रंथ हैं शास्त्र, उसके अठारह हजार पद है, एक-एक पद में इक्यावन

करोड़ से भी अधिक श्लोक है - ऐसा (दुगना) सूत्रकृतांग छत्रीस हजार पद, बहत्तर हजार पद, एकसौ चबालीस हजार पद इसप्रकार दुगने-दुगने होने पर ऐसे ग्यारह अंग और उससे भी बारहवां अंग जिसमें चौदहपूर्व उसके अतिरिक्त... (ऐसी) जिसने अंतर्मुहूर्त में रचना की बापू ! यह शक्ति कैसी होगी ? आहाहा ! समझ में आया ? आहाहाहा !

बारह अंग किसे कहें ? एक अंग में अठारह हजार पद और एक-एक पद में इक्यावन करोड़ से भी ज्यादा श्लोक - ऐसे ग्यारह अंग और बारहवाँ अंग तो कोई अपार है। आहाहा ! परंतु गणधर के आत्मा की ताकत है... आहाहा ! अंतर्मुहूर्त में अड़तालीस मिनट के अंदर क्रमशः... रचना में (बारह अंग की करने में) अंतर्मुहूर्त लगा। आहाहा ! एक साथ तो (एक समय में) कर सकते नहीं, रचना क्रमशः करते, आहाहा ! बारह अंग की रचना करने पर क्रमशः अंतर्मुहूर्त लगा। आहाहा ! वह ताकत कितनी ? आहाहा ! भावश्रुतज्ञानरूप परिणमे हैं। चैतन्य भगवान यह जो चलती है यह ग्यारहवीं गाथा। ज्ञायक के अवलम्बन से जिसे भावश्रुतज्ञान हुआ है, भगवान की वाणी तो निमित्त है ? समझ में आया ?

अंदर में परमात्म स्वरूप पूर्णप्रभु पूर्णानंद का नाथ परिपूर्ण स्वभाव से भरा, अतीन्द्रिय आनंद के भाव से पूरा भरा हुआ, आहाहा ! इसप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान के भाव से पूरा भरा - ऐसा ज्ञायकभाव। अपनी ग्यारहवीं (गाथामें) चलता है। आहाहा !

इस ज्ञायकभाव को अंतर्मुहूर्त में आश्रय लेकर... एक ही समय होता है उनको तो, उपयोग में समय लगता है (अंतर्मुहूर्त) एक ही समय में समयांतर कर डाला ज्ञान। आहाहा ! जो मिथ्याज्ञान था वेदांती थे न वह तो ? गौतम ! ब्राह्मण थे। वेदों के पूर्ण ज्ञानी थे। परंतु जिसने ज्ञायक (अनुभव किया)... भगवान की वाणी तो निमित्त है। परंतु उनकी ताकत इतनी थी। आहाहा ! कि यह ज्ञायक पूर्ण स्वभाव भाव उसका अवलम्बन लेकर, यह ज्ञायक भाव है, वह निरालम्बी है... अभी बताया था किसी को गाथा या श्लोक वहाँ ऊपर बताई थी ? निरावलम्बन है। आहाहा ! वस्तु के प्राप्त होने में किसी बाह्य अवलम्बन की जरुरत नहीं - ऐसा जो निरावलम्बी प्रभु उसका अवल्मबन लेकर, जिसे भावश्रुतज्ञान, आनंद के स्वाद सहित का भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ... आहाहाहा !

जिस ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। आहाहा ! - ऐसा ज्ञान, जिसने अंतर्मुहूर्त में... यह तो उपयोग अंतर्मुहूर्त है, है तो एकसमय में। आहाहा ! समयांतर में एकदम पूरी दिशा बदल गई। जो दृष्टि राग और पुण्य ऊपर थी, यह दृष्टि हुई ज्ञायक के आनंद के सागर में,

एक समय में ज्ञान सम्यक् हो गया। जिस ज्ञान ने भावों का छोर पकड़ा, आहाहा ! उस ज्ञान को प्राप्त करके (गणधर देव) बारह अंग की रचना और चारज्ञान की प्राप्ति अंतर्मुहूर्त में कर ली। आहाहा !

देखो ! गणधर की ताकत, है छद्मस्थ, परंतु अंदर में आत्मा है न। आहाहा ! वेदांत में पूर्ण (प्रवीण) थे, वेदांत में प्रवीण थे, उसके श्रेष्ठ प्रमुख थे। आहाहा ! ऐसे दृष्टिवंत भी... त्रिलोक के नाथ की दिव्यध्वनि जहाँ सुनी आहाहाहा ! उन्होंने पुरुषार्थ की गति को अंतरोन्मुख किया, जो (गति) राग ऊपर थी। आहाहा ! (उस दृष्टि को अंतर्मुख किया !) भाव कठिन है बापा ! आहाहा !

और यह श्रुतकेवली, आहाहा ! श्रुत को अंतर्मुहूर्त में दुहराया जायें - ऐसी उनकी ताकत है। अंतर्मुहूर्त में रचना करें... बारह अंग किसे कहें भाई ! इसका कभी विचार किया है ? आहाहा ! जिसके तीसरे भाग में तो चौदहपूर्व आते हैं और उसके अलावा दो भाग दूसरे हैं। आहाहा ! ऐसे पूरे बारह अंग की रचना अंतर्मुहूर्त में की, परंतु छद्मस्थ होने से क्रमशः की। केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह एक समय में होता है। समझ में आया ? आहाहाहा !

यह बारहअंग की रचना का दिन भी आज है। यह जो शास्त्र है यह, उसका अर्थ (व्याख्या), फिर बारहअंगों के जाननेवालों का विच्छेद हो गया, फिर ग्यारह अंग के जानकार रहे, फिर उनका भी विच्छेद हो गया (इस प्रकार समय बीतने पर) अंत में एक अंग के ज्ञाता रहे, उनका विच्छेद हो गया, फिर एक अंग के अंश के ज्ञाता रहे। आहाहा ! उस अंश के ज्ञाताओंमें से यह कुन्दकुन्दाचार्य। एक अंग में अमुक अंश के ज्ञाता थे। आहाहा ! उसमें से उन्होंने समयसार बनाया। आहाहा ! यह समयसार ग्रंथ की प्रमाणिकता है। (यह) स्वयं पांचमी गाथा में कहा है।

हमारे गुरु जो हैं कि अरहंत जो हैं, आहाहा ! यह अरहंत विज्ञानघन में निमग्न थे। केवलज्ञानी परमात्मा महावीर प्रभु आदि, यह (भी) विज्ञानघन भगवान (आत्मा) उसमें निमग्न थे, और फिर गणधर हुये वह (भी) विज्ञानघन में निमग्न थे, वहाँ से हमारे गुरु पर्यंत... आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहतें हैं कि हमारे गुरुपर्यंत... अरहंत जैसे (ही) विज्ञानघन में मग्न थे, `निमग्न', मग्न अकेले नहीं - ऐसे हमारे गुरु विज्ञानघन में (अंतर्निमग्न थे), विज्ञानघन भगवान... अकेला विज्ञान का पुंज पूर्ण प्रभु। उसमें अरहंत निमग्न थे, ऐसे हमारे गुरु भी निमग्न थे। प्रारंभ से अरहंत से लेकर हमारे गुरु(पर्यंत)... आहाहाहाहा !

देखो यह शास्त्र की प्रमाणीकता बताने में ऐसे प्रमाणिक पुरुष थे। समझ में आया ? आहाहा ! फिर भी उन्हें निर्मानता, निर्मानता, निर्मानता, आहाहा ! कहाँ प्रभु

हमारा भावश्रुतज्ञान और कहाँ प्रभु तुम्हारा केवलज्ञान ? आहाहा ! जिन्हें अंतर्मुहूर्त में बारहअंगों की रचनाकी ताकत, और बारह अंग का ज्ञान अंतर्मुहूर्त में प्रगट किया। आहाहा ! यह संत कहते हैं, प्रभु कहाँ आपका केवलज्ञान की पर्याय और कहाँ हमारी यह पामर श्रुतज्ञान की पर्याय ? आहाहाहाहा ! - ऐसा है ! यहाँ तो थोड़ा बहुत कहीं धारणा में आया और याद रहा, वहाँ उसे - ऐसा हो जाता है कि हम गये और हम आगे बढ़ गये अरे ! बापा यह अंतर का अलौकिक मार्ग है भाई ! आहाहा ! आहाहा !

जिन गणधर ने बारह अंगों की उत्पत्ती एक क्षण में की और रचना एक क्षण में की, चार ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय की उत्पत्ती एक क्षण में हुई, यह पुरुष - ऐसा कहते (है), प्रभु आपका केवलज्ञान कहाँ ? पर्याय हो ? द्रव्य की तो बात क्या करना ? केवलज्ञान की पर्याय कहाँ प्रभु और हमारी श्रुतज्ञान की पर्याय कहाँ ? आहा ! प्रभु हम पामर हैं, हो ! आहाहा ! वस्तु अपेक्षा हम प्रभु हैं, परंतु पर्याय अपेक्षा ऐसी रचना की अंतर्मुहूर्त में बारहअंग की शक्ति... वह भी - ऐसा कहते हि हम पामर हैं। आहाहा ! उसमें से बना यह समयसार है। उसका तो यह थोड़ा एक भाग है, फिर भी बहुत बात आ गई है।

अपना यहाँ तक आया है, है न !

जिसमें भावों का अनेकपना प्रगट है, अज्ञानी - ऐसा अनुभवता है। आहाहा ! पर्याय में ग्यारहवीं गाथा (के)... बीच में है बीच में कल था। कल तो स्वाध्याय थी परसों, है ? बीच में `व्यवहार से विमोहित हृदयवाले, जिसमें भावों का अनेकपना है - ऐसा अनुभवते हैं' क्या कहा यह ? कि पर्याय में अनेक प्रकार के शुभाशुभ राग हैं, उसमें पर्याय मूढ़ हुआ विमोहित जीव, आहाहा ! उसे यह मेरा स्वरूप है - ऐसा अनुभवता है। आहाहा ! उसका इन्हें वेदन है, दुःख का। आहाहा !

जो ज्ञान, भावों का अनेकरूपपना उसमें विकल्पों के अनेक प्रकार हैं। अज्ञानी को स्वभाव का आश्रय तो हुआ नहीं। जिसके अवलम्बन से एकता हो और अनेकता टूटे यह तो हुआ नहीं। इसलिये अनेकपने को ही अनुभवता है, पुण्य और पाप, दया और दान आदि असंख्य प्रकार के शुभ एवं असंख्य प्रकार अशुभ के, उसे अज्ञानी व्यवहार मोहित, उलझा हुआ प्राणी, व्यवहार में मूढ़ प्राणी उसे अनुभवता है। समझ में आता है कुछ ? आहाहा !

अब, **`किन्तु भूतार्थ दर्शियो'** है ? विद्यमान पदार्थ है, विद्यमान मौजूद पदार्थ है आहाहा ! महाचीज है, वस्तु है, मौजूदगी, विद्यमान पदार्थ है, ध्रुव ज्ञायकभाव। आहाहा ! इस शुद्धनय को देखनेवालों को, अंतर में देखनेवाले... जो पर्याय पर को देखती है, उसे छोड़कर जो पर्याय अपने को देखती है... **`ऐसे शुद्धनय को देखनेवाले अपनी**

बुद्धि से डाले हुये' आहाहा ! पुरुषार्थ द्वारा राग से भिन्न होकर आहाहा ! राग और स्वभाव के बीच प्रज्ञा छैनी, पुरुषार्थ से डाली है। बीच में प्रज्ञाछैनी पटकी है। आहाहा !

है ? अपनी बुद्धि से, जो अपनी ज्ञानदशा है, स्वयं की ज्ञान पर्याय, उससे डाला हुआ (अर्थात) राग और स्वभाव के बीच इस प्रकार प्रज्ञाछैनी डालकर... आहाहा ! **`शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से',** स्वभाव के आश्रय से जो बोध हुआ, शुद्धनय के आश्रय से जो बोध होने मात्र से क्या कहा ? आहा ! स्वयं के ज्ञान की निर्मल पर्याय, उसे स्वभाव तरफ झुकानेपर जो शुद्धनयानुसार बोध - ज्ञान होने मात्र से उत्पन्न हुआ, ज्ञायक का ज्ञानमात्र होने से उत्पन्न हुआ, आत्मा कर्म के विवेकता के कारण से... आत्मा और राग का विकल्प है यह कर्म। आत्मा और कर्म के विवेक से दोनों की भिन्नता से... आहाहा ! ज्ञायकभाव, जो शुद्धनय के अनुसार उसका ज्ञान होने पर, आत्मा और कर्म की विवेकता से... आहाहा ! राग और स्वभाव की भिन्नता का ज्ञान होने पर, आहाहा ! ऐसी बात है।

अपनी बुद्धि से डाले हुये, इसका अर्थ क्या ? आहाहा ! सुना हुआ ज्ञान है यह भी नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सुना है वह ज्ञान नहीं, यह अपनी बुद्धि नहीं। यहाँ तो चैतन्यस्वरूप भगवान, उसका अनुसरण करके जो ज्ञान हुआ वह अपनी बुद्धि से जो ज्ञान हुआ वह अपनी बुद्धि से, इस ज्ञान से, आहाहा ! **`अपनी बुद्धि से डाले हुये शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से, उत्पन्न आत्मकर्म की विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा**' देखा ! (कैसी) भाषा रखी ? स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा अंदर में कर्म थोड़े हटे हैं अतः यह काम होता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! `अपने पुरुषार्थ द्वारा, आहाहा ! आर्विभूत किये गये'... क्या ? ***जो त्रिकाली ज्ञायकभाव राग के और पर्याय बुद्धि के प्रेम में ढ़का हुआ था... ख्याल में नहीं आता था। आहाहा ! एक समय की पर्याय के प्रेम में कि विकल्प के प्रेम में वह ढ़क गया था, वस्तु थी विद्यमान फिर भी वह आच्छादित ढ़क गई थी। आहाहा ! अज्ञानी को आच्छादित हो गई है। वस्तु आच्छादित होती नहीं परंतु उसका आच्छादन पर्याय में हुआ अर्थात ढ़क गया है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा !***

वस्तु ज्ञायकस्वरूप जो पदार्थ है यह तो त्रिकाली शुद्ध और आनंदकंद ही है वह ढ़कता नहीं और प्रगट होता नहीं, यह तो है ही ऐसी। आहाहा !

यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है, पूरे बारह अंग और जैनशासन का मूल है यह। सूक्ष्मबात है भाई ! अभी तो मुश्किल हो गई है। बाहर की बात और बात है - ऐसा यह किया और यह किया, व्रत किया, और तप किया और प्रतिमा ली,

आहाहा ! यह सभी अनेक विकृतभाव, उसे अनुभवनेवाले, व्यवहार में मूढ़ हो गये हैं यह तो, और ऐसे (शुद्धनय के) ज्ञानवाले व्यवहार के जाननेवाले (मात्र) रह गये हैं अभी। आहाहा ! जिसे आत्मा और कर्म, कर्म अर्थात राग, चाहे जीव का शुभराग हो यह राग और आत्मा का विवेकपने से, उसे भिन्न करने से उसे अलग करने से। आहाहा ! उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, आहाहा ! उसमें से अपने पुरुषार्थ द्वारा आर्विभूत करने में आया हुआ, क्या ? सहज एक ज्ञायकभाव ! आहाहा !

पुनश्च ! एक तरफ - ऐसा कहना कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, यह त्रिकाली शुद्ध ही है। उसे किसी दिन आवरण हुआ नहीं, अशुद्ध होता नहीं, हीन होकर रहता नहीं। आहाहा ! इतने-इतने अनंतभव किये, परंतु ज्ञायक भाव में कुछ भी कमी आयी नहीं। फिर भी यहाँ - ऐसा कहते है कि ज्ञायक भाव ढ़क गया है। इस पर्यायवालों की (पर्याय) दृष्टि है, उसके नजर में नहीं (इसलिये) ढ़क गया है। आहाहा ! वीतराग मार्ग कोई अलौकिक है बापू ! आहाहाहा !

यह... जिसमें एक ज्ञायक भाव। आहाहा ! उसमें अनेक शब्द था, है न ? जिसमें भावों का विश्वरूपपना अनेकपना प्रगट है, उसे अनुभवता है। अब यह, आत्मा और कर्म के भिन्नरूप से, विवेक अर्थात भिन्नपना से, अपने पुरुषार्थ द्वारा प्रगट करने आया हुआ, आर्विभाव अर्थात... उसमें - ऐसा था समझ में आया ? विश्वरूप प्रगट है - ऐसा था इसमें देखा ? जिसमें भावों का विश्वरूपपना प्रगट है - ऐसा था। इसमें ऊपर से तीसरी पंक्ति... आहाहा ! चौथी-पांचमी पंक्ति... जिसमें भावों का अनकेपना प्रगट है - ऐसा था। अब यहाँ यह प्रगट (ज्ञायकभाव) किया। आहाहा ! है तो है परंतु राग से भिन्न होकर और जैसा ज्ञायकभाव है, वैसा दृष्टि में प्रगट किया। आहाहाहाहा ! है ? वह है ?

`जिसमें भावों का विश्वरूप प्रगट है,' - ऐसा अनुभवते हैं। है ? अंत में परसों सुबह आया था। आहाहा ! यह अनेकपना अनुभवते हैं इसलिये उसे ज्ञायकभाव ढ़क गया है। आहाहा ! और यह एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है। देखा ? आहा ! उसको (अज्ञानी का) अनेक भाव प्रगट है उसे अनुभवते है, इसलिये ज्ञायकभाव वस्तु है वह आच्छादित हो गई, ढ़क गई है, विद्यमान हो उसे ढ़क गई कहलाये न ? आहा ! अग्नि ऊपर राख डालते है न ! वह अग्नि दब गई - (ढ़क गई) परंतु अग्नि तो अग्नि है। आहाहा ! इसतरह चैतन्य चमत्कार वस्तु जो तत्त्व है, वह राग की एकता बुद्धि में दब गया - ऐसा कहो, तो भी यह तो ज्ञायक चैतन्य प्रकाश का नूर का तेज तो जो है वह है। अज्ञानी की नजर में नहीं आया इसलिये ढ़क गया - ऐसा कहा जाता है।

अरे ! अब - ऐसा उपदेश। जिसकी एक-एक बात को पकड़ने में बहुत सावधानी चाहिए। आहाहा ! शादी के समय नहीं कहते ? समय रहते सावधान। समय आ गया है, होता है न लगन का मुहूर्त कि आठ बजकर पच्चीस मिनट पर मिलाप (हस्तमिलाप) करना - ऐसा है कुछ, हमने तो किसीका ज्यादा देखा नहीं, एक खुशालभाई का देखा था। - ऐसा बोले वह मंत्र बोलनेवाला बोले, समय रहते सावधान - समय हो गया है इसप्रकार, कन्या का लाओ। - ऐसा होगा न तुम्हारे हिन्दी प्रांत में - ऐसा होता है कि नहीं ? (श्रोता :- ऐसा ही होता है) होता है होता है अन्य तरह से कहते होंगे (श्रोता :- समय रहते सावधान) उनको खबर ही कहाँ है यही बोलते है वह, वह समय होता है आठ बजकर पच्चीस मिनट उस समय बोलते कि लाओ समय रहते सावधान।

यहाँ (भी) समय रहते सावधान। आहाहा ! आत्मा आनंद का नाथ प्रभु राग से जहाँ भिन्न हुआ, सावधान होकर अंदर में गया, ज्ञायक आर्विभूत हो गया, जो ढ़का हुआ था वह आर्विभूत हो गया था। आहाहा !

अरे ! इस क्रियाकाण्ड में लीन को ऐसी बात समझना कठिन लगे न ! गुलाबजी ! आहा ! प्रभु मूल मार्ग - ऐसा है भाई ! और वह भी प्रभु तुम्हारे हित का है न नाथ। आहा ! तुम सुख के रास्ते कैसे लगो, यह बात है। दुःख के रास्ते तो चल ही रहे हो प्रभु। तुम, विश्व के अनेकरूप भाव अर्थात विकार-विश्वरूप अनेकरूप यह तो दुःख का पंथ है वहाँ तो चल ही रहे हो अनादिकाल से, इसलिये प्रभु तुम्हारा ज्ञायक स्वरूप ढ़क गया है तुम्हें, पर्याय दृष्टि की अपेक्षा से आहाहा ! जो प्रगट बाह्य विकल्प है उसे यह अनुभवता है, परंतु अंदर में जो महाप्रभु ज्ञायकभाव है वह तो उसे ढ़क गया है। तब... कर्म और आत्मा का विवेक करनेवाला अपने पुरुषार्थ द्वारा, आहाहा ! सहज एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा कहा, उनको प्रगट है यहाँ प्रकाशमान है। आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

टीका बहुत गंभीर ! हिन्दुस्तान में ऐसी टीका अभी अन्यमत में तो नहीं, परंतु जैनमत में दिगम्बर में भी ऐसी `आत्मख्याति' जैसी दूसरी एक भी टीका नहीं ऐसी अलौकिक टीका है। अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहाहाहा ! दिगम्बरसंत ! आहाहा !

फिर भी यह अंत में - ऐसा कहते हैं प्रभु यह टीका की रचना हमसे नहीं हुई हाँ। आहाहा ! मैं तो ज्ञान स्वरूप हूँ, तब मैं तो अपने में हूँ, इस वाणी में मैं कहाँ से आया, कि मैं वाणी को रचूँ ? आहाहा ! जहाँ मैं हूँ वहाँ तो वाणी नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूप में स्वरूप गुप्त हूँ। आहाहा ! तब मैं वाणी को बनाऊँ यह कहाँ से आये ? आहाहाहा !

अभी एक प्रश्न मंदसौरवालों ने प्रश्न किया है - ऐसा कि बहिनश्री (चंपाबेन) ने - ऐसा लिखा कि चेतन जानने में आता है परंतु पूरा कह सकते नहीं - ऐसा क्यों ? - ऐसा कहा न कि महाराज भी (कानजीस्वामी) एक घण्टे मूसलाधार (वाणी की वर्षा) करते है - ऐसा लिखा है उन्होने, परंतु भाषा कौन करे ? अरे प्रभु भाई ! भाषा भाषा के कारण निकलती है।

ऐसा कहा है न ? सर्वज्ञ की वाणी सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली कहलाती है, अनुभवशीली - ऐसा पाठ है न पहला, पं. राजमलजी की टीका में। भगवान की वाणी कैसी है कि अनुभवशीली कि सर्वज्ञ को अनुसरण करनेवाली अर्थात ? कि सर्वज्ञ के अनुसार (परिणमित हो) वाणी निमित्त है उसके अनुसार है निमित्त से होती है - ऐसा नहीं। आहाहा ! जैसा वहाँ सर्वज्ञपना है इसीप्रकार वाणी निमित्त को अनुसरण करके अपने उपादान की शक्ति से स्वपरप्रकाशक वाणी परिणमित है। आहाहा !

अरे प्रभु तो ज्ञान स्वरूप है यह राग में आता नहीं तब वाणी में कहाँ से आये ? आहाहा ! वाणी में स्वपरप्रकाशक कहने की स्वतः शक्ति है। आत्मा में स्वपरप्रकाश जानने की स्वतः शक्ति है। जानने की स्वतः शक्ति (है) वाणी में स्वतः पर की अपेक्षा बिना... आहाहा ! चाहे उसे अनुसरण करनेवाली कही, परंतु वह तो पर की अपेक्षा रखकर (- ऐसा है नहीं) वह तो अपने से स्वयं ही परिणमती है। आहाहाहा !

यह चर्चा चली है... उस खानियाँ (चर्चा) में आयी है। `खानियाँ चर्चा' में यह चर्चा हुई है। - ऐसा कि वाणी तो भगवान को अनुसरण करनेवाली है, अरे बापू ! किस अपेक्षा से है ? यह तो निमित्त है इस अपेक्षा से कहा है। शेष वाणी तो वाणी के कारण, उस समय परमाणु भाषारूप परिणमने लायक थे वे स्वयं से परिणमे हैं। ऐसी बात। आहाहा !

एक ज्ञायकभाव। आहाहा ! उसमें भावों का विश्वरूपपना और अनेकरूपपना - ऐसा था। विश्वरूपपना अनेकरूपपना प्रगटता है - ऐसा अनुभव होता है। आहाहा ! तभी धर्मी जीव स्वयं को राग और आत्मा की भिन्नता के कारण, अपने पुरुषार्थ द्वारा, प्रगट करने में आया हुआ... `है तो है' परंतु दृष्टि में जब आया तब प्रगट किया गया - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा ! (अपने पुरुषार्थ द्वारा) आर्विभूत करने में आया हुआ - ऐसा सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण। आहाहा ! `आर्विभूत करने में आया हुआ - ऐसा एक सहज ज्ञायकभावपने के कारण' आर्विभूत करने में आया का मतलब ? दृष्टि में उसका स्वीकार हुआ है - ऐसा, उसने आर्विभाव किया - ऐसा कहने में आया। आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

वर्तमान दृष्टि उसके सन्मुख हुई और उसका स्वीकार हुआ इसलिये उसे, आहाहा ! एक ज्ञायकभाव ही प्रकाशमान है। आहाहा ! जिसकी दृष्टि अथवा ज्ञान की पर्याय में एक ज्ञायकभाव ही प्रकाशमान है। जिसकी ज्ञान पर्याय में अनेक विकल्पोंके परिणाम प्रगट हैं, उनका अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि, व्यवहार में मूढ़ हो गया है और इस राग से भिन्न होकर अपनी ज्ञान पर्यया में परिपूर्ण भाव (ज्ञायकभाव) पूरे भावों का ज्ञान होने पर वह ज्ञायक भाव प्रकाशित है। ज्ञान की पर्याय में एक ज्ञायकभाव प्रकाशित है। सम्यग्ज्ञान की एक पर्याय में, आहाहा ! एक ज्ञायकभाव प्रकाशित है - ऐसा अनुभवता है। आहाहा !

सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ दृष्टि अंदर रहती है। सम्यग्ज्ञान राग को और आत्मा को भिन्न करके एवं आत्मा तरफ जहाँ झुका है ज्ञान, तब वह सहज एक ज्ञायकभावपने के कारण उसे एक ज्ञायकभाव, उसकी पर्याय में प्रकाशमान हुआ। आहाहाहा ! अंधेरे में था वह प्रकाश में आया। आहा ! यह चैतन्य जलहल-जलहल ज्योति, जिसकी ज्ञान की पर्याय राग से भिन्न होकर पुरुषार्थ द्वारा अंदर जाती है उसे एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान दिखाई देता है। समझ में आया ? इसका नाम तो अभी सम्यग्दर्शन है। आहाहाहा !

उसकी विधि और रीत की भी खबर न लगे उसे यह एकांत लगे- ऐसा भी (कहते है) उसका साधन क्या ? यह साधन यही है। अपने पुरुषार्थ द्वारा, राग से (आत्मा को) भिन्न करके एक सहजज्ञायक भाव प्रकाशमान आया यह उसका साधन (है) आहाहा ! दूसरा साधन नहीं उसका नाम अनेकांत है और वह तो - ऐसा कहते हैं कि वह भी सच्चा और व्यवहार से भी होता है यह वास्तव में तो अनेकांत है। अरे ! भगवान - ऐसा नहीं होता। अस्ति-नास्ति है यह सप्तभंगी का पहला बोल है।

स्वरूप से है पररूप से नहीं। इसप्रकार स्वरूप से भी है और पररूप से भी है ? आहाहा ! अनेकांत का अर्थ स्वरूप से भी है और पररूप से भी है इसका नाम अनेकांत है ? स्वरूप से है पररूप से नहीं। चौदह बोलों में तो आता है। अनेकांत को प्रकाशित करनेवाला... अमृतचन्द्राचार्य... चौदह बोल तत्त-अतत, एक-अनेक। आहाहा ! जो स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, वह पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। आहाहा !

जो निश्चय से शुद्ध चैतन्य प्रकाशमान है, वह राग से प्रकाशमान (हो) एवं राग से जानने में आये - ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है परंतु क्या हो ? भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है यह... विपुलाचल पर्वत ऊपर, राजगृह में भगवान की वाणी निकली होगी... ऐसे गणधर (और) इन्द्रो (सुनी होगी) आहाहा ! पच्चीसौ वर्ष हो गये।

आहाहा !

अनेकों को वहाँ आत्मज्ञान हुआ। किसी को मुनिपना आया। आहाहा ! उन्हें गौतम को एकदम मुनिपना आया, भगवान विराजते थे। आहाहा ! भगवान ने धर्म की हाट भरी । आहाहा ! कुछ माल लेने आये थे। आहाहा ! विपुलाचल पर्वत ऊपर। आहाहा ! गणधर जैसोने मुनिपना ले लिया दूसरे अन्य श्रावक हुये थे, कोई मुनि, समकित हुये थे। आहाहा !

और यह बारह अंग की रचना का दिन यही है अर्थात कि यह शास्त्र उसी में का है अर्थात इसकी रचना का दिन यही है। आहाहा ! समझ में आया कुछ? सूक्ष्म है बापू, परंतु क्या करें ? आहाहा !

चौराशी के अवतार में देखो न, आहाहा ! सुनते है न कोई लड़की जलकर मर गई, लड़के के लड़के का हार्ट फैल हो गया। आहाहा ! कोई लड़का केन्सर से ऐसे मर गया... बेचारे कल आये थे न ! दामनगरवाले भावसार थे। वहाँ दो-तीन घर ही यहाँ के मुमुक्षु लोग हैं। उसमें एक भावसार थे। शरीर बहुत ह्रष्टपुष्ट था, परंतु उसे केन्सर हो गया। लड़का कल आया था। (कहता) हमारे पिताजी मर गये, केन्सर में गुजर गये। इस रविवार को हमारी पूजा थी लड़के को पहचानते नहीं थे, उसके पिताजी को पहचानते थे। कहो ! इकसठ वर्ष की उम्र में केन्सर परंतु अंत तक यहाँ की धुन... कुछ सलाह नहीं कि तुम क्या करोगे इसका, बिलकुल नहीं... हमारे बाद यह करना - ऐसा कुछ नहीं (कहा)। वह तो अपने विचार में थे बस उस ही (समय) देह छूट गयी। आहाहा !

अन्यथा कुछ तो कहें कि तुम्हारी माँ को सम्हालना, अमुक का यह करना, अमुक करना। आहाहा ! कौन सम्हाले बापू ! आहाहा ! तुम्हारा विकल्प ही मुफतमें जायेंगा। हाँ ? ऐसे भी लड़के होते है कि सामने ही नहीं देखते उसकी माँ के सामने ऐसे भी होते हैं न ? बहुत उदाहरण हैं बहुत देखे है न बापू ! बापू किसका कौन है भाई ? सभी स्वार्थ के सगे है, अपनी पुष्टी मिले वहाँ तक वह, अच्छे लगें। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं अज्ञानी आत्मा को, जिसमें अनेक भावोंका प्रगटपना है - ऐसा अनुभव करता है। धर्मी जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, - ऐसा अनुभव करता है। आहाहा ! यह दोनों की बात। अंतर प्रभु चैतन्यज्योति जलहल ज्योति भगवान, शुद्धानंद का नाथ प्रभु स्वयं परमात्मा स्वरूप है। इसके जैसी कोई सर्वोत्कृष्ट चीज ही नहीं। - ऐसा एक सहज ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा अनुभव करता है। आहाहा !

देखो ! यह सम्यग्दर्शन और उसके साथ रहनेवाला सम्यग्ज्ञान।आहाहा ! यह

तो शुरूआत होती है। अभी धर्म की यहाँ से शुरूआत होती है। उसका पता न लगे न। आहाहा !

`**यहाँ शुद्धनय कतकफल के स्थान पर है**' जैसे वह पानी और कीचड़ था, उसमें जो निर्मल औषधि डाली थी, तब मैल और पानी भिन्न हो जाता है। इसीप्रकार यह शुद्धनय अर्थात कतकफल के स्थान पर है। राग और भगवान यह सम्यग्ज्ञानसे भिन्न हो जाते हैं। जैसे कतकफल निर्मल औषधि से कीचड़ का मैल और निर्मलजल भिन्न हो जाता हैं। इसीप्रकार यह शुद्धनय अर्थात ? स्वभाव का अनुसरण करके जो ज्ञाननय यह ज्ञान उसके साथ अनुसरण करता है, आहाहा ! यह कतकफल के स्थान पर (है), यह राग को भिन्न करने के स्थान पर।

उसमें मिथ्याज्ञान राग की एकता करने को था, यह राग को भिन्न करने के स्थानपर है। जो ज्ञान, स्वभाव सन्मुख हुआ, तब उस ज्ञान ने राग और स्वभाव दोनों को भिन्न किया। आहाहा ! यह निर्मल औषधि की तरह है शुद्धनय, - ऐसा कहते हैं। निर्मल औषधि डालकर भिन्न हो, इसतरह शुद्धनय जब अंदर स्वभाव तरफ झुकता उस ज्ञान ने राग को और आत्मा को भिन्न किया। आहाहाहाहा !

शुद्धनय कतकफल के स्थानपर है। इसलिये जो शुद्धनय का आश्रय करते हैं अर्थात त्रिकाली का आश्रय करते हैं, वही सम्यक् अवलोकन करनेवाले हैं। आहाहा ! शुद्धनय के आश्रय का यह अर्थ है। शुद्धनय का विषय त्रिकाली है यह त्रिकाली (ही) शुद्धनय का विषय त्रिकाल ही है। यह त्रिकाली ज्ञायक भाव का आश्रय करता है। `**वह ही**' (क्या कहा ?) `वह ही' आहाहा ! जो त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यध्रुव एक समय में हाँ ! परंतु त्रिकाल अर्थात भविष्य में रहेगा ना, (- ऐसा नहीं) यहाँ तो वर्तमान में। आहाहाहा ! ज्ञायकभाव ध्रुव टिकता हुआ त्रिकाली तत्त्व। आहाहा ! उसका जो आश्रय करता है, वह ही सम्यक् अवलोकन करता होने से `वह ही' एक ही, सम्यक अवलोकन करनेवाला होने से सम्यग्दृष्टि है। आहाहाहा ! है कि नहीं इसमें ?

जो शुद्धनय का अर्थात भूतार्थ का... गाथा में दो बातें आयी थी न ? भूतार्थ वही शुद्धनय है। दूसरे पद में - ऐसा आया था, यह त्रिकाली वस्तु वह ही शुद्धनय है और तीसरे पद में - ऐसा आया था कि भूतार्थ का आश्रय करे तो शुद्धनय का आश्रय किया कहलाये, और इस पर्याय को भी शुद्धनय कहते हैं। १४ वीं गाथा में आता है, जो वस्तु शुद्धनय है यह त्रिकाल को भी कहते है, और उसके आश्रय से आनंद आया-निर्मल सम्यग्ज्ञान हुआ वह भी शुद्धनय कहने में आता है। उसीका अंश प्रगटा न ? अनुभव कहो, शुद्धनय कहो कि आत्मा कहो तीनों एक ही है। आता है न चौदहवीं गाथा में ? यह तो ग्यारहवीं चलती है। आहाहा !

जो शुद्धनय का आश्रय करते हैं। `भूदत्थमस्सिदो' है न ? इसकी व्याख्या हुई, जो त्रिकाली ज्ञायकभाव (है) उस तरफ जिसने ज्ञान को मोड़ा है, और इस ज्ञान की पर्याय में जिसे त्रिकाली का आश्रय है। इसप्रकार जो त्रिकाली को अवलोकते हैं... आहाहा ! `वे ही सम्यक् अवलोकन करते हुये (होनेसे)'... क्योंकि सच्चा अवलोकन तो वही करनेवाले हैं... त्रिकाली चैतन्य का पुंज प्रभु... आहाहा ! परमेश्वर स्वरूप प्रभु ! ऐसे परमेश्वर का जो आश्रय करता है और वह आश्रय करके वह परमेश्वर को अवलोकते हैं आहाहा ! वही सम्यग्दृष्टि है।

ऐसी गाथा है यह। अभी तो यह चौथे गुणस्थान की बात है, प्रतिमाधारी पांचमें और मुनि छठवें (सातवें) वह तो कहाँ ? यहाँ तो दो-चार प्रतिमा ली वहाँ तो हो गया अपने को, जानें कि पांचवें गुणस्थान में आ गये। महाव्रत लिये कि जाने आ गया मुनिपना अरे... रे... ! आहाहा !

(श्रोता :- पात्र हो तो मालूम पड़े वह पात्र तैयार हो तो मालूम पड़े न) उत्तर :- यह वह अंतर्मुख जाये तब माल मिले। जहाँ माल है वहाँ जायें तब माल मिले, माल कहाँ है ? अंतर में है, परमात्म स्वरूप प्रभु परमेश्वर स्वरूप ही है। आहाहा ! अपना परमेश्वर को भूल गया था, आया है न अड़त्तीस गाथा में, आहाहा ! अड़त्तीस गाथा में आता है, अपने परमेश्वर को भूल गया है, अपना परमेश्वर, भगवान नहीं कहा। आहाहाहा !

उसे भूल गया था, जैसे मुठ्ठी में सोना हो, परंतु यह भूल गया, सोना कहाँ ? सोना कहाँ ? दातुन करते समय सोना (की अंगूठी) निकाल कर इसप्रकार मुठ्ठी में रखी हो फिर कहे कि कहाँ गया ? (सोना) वहाँ के वहाँ रह गया हो मुठ्ठी में, मुठ्ठी में सोना फिर भी भूल गया, इन बहिनों की गोदी में बालक हो परंतु भूल जायें, इसप्रकार गोदी में बालक हो एवं - ऐसा कह रही हो कि कहाँ गया ? कहाँ गया ? यहाँ ध्यान नहीं रहे... आहाहा ! (श्रोता :- बहिनें भूले परंतु पुरुषों ने गोदी में लिया हो तो पुरुष भूले कि नहीं ?) पुरुषों ने बाप भूले सभी (भूलें), यह तो बहनों की बात है। बहुधा तो बालक को बहिने ही सम्हालतीं, (है) अर्थात आहा... हा ! बहनों की गोद में बालक और भूल जाय इसप्रकार। इसीप्रकार पुरुषों की गोद में बालक और भूल जाये। आहाहा ! इसीप्रकार भगवान अंदर प्रकाशमान ज्योति है, उसे भूल गया। आहाहा ! और जो उसमें नहीं उसे याद किया। पुण्य और पाप को उसने याद करके उसमें रुक गया। दूसरे दिन विशेष बात (आयेगी)।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)